तदवीने हदीस

(हदीस का संकलन)

लेखक –

डॉ0 मुहम्मद हमीदउल्लाह

अनुवादक – डॉ० रफ़ीक़ अहमद

तारीख़ हदीस शरीफ़

आदरणीय वाइस चान्सलर साहब! सम्मानित शिक्षक गण! भाइयों और बहनों!

अस्सलामअलैकुम व रहमतुल्लह व बराकातुह

जैसा कि अभी एलान किया गिया कि आज की तक़रीर का विषय हदीस का इतिहास है। क़ुरआन मजीद के बाद हदीस शरीफ का ज़िक्र करना ज़रुरी है इसलिये कि यही दो चीज़ें है जो इस्लाम की मूलआधार हैं। शायद यह मुनासिब न होगा अगर शुरु ही में इतिहास के इस पहलू पर नज़र डालूं कि हदीस की अहमियत क्या है और यह कि हदीस और क़ुरआन का एक दूसरे के साथ किस तरह का ताल्लुक़ है? ज़ाहिर है कि क़ुरआन मजीद ने और कुछ नहीं तो दस-पन्द्रह जगह स्पष्ट रुप से मुसलमानों को हुक्म दिया है कि रसूलुल्लाह सल्ल० की बात मानों जैसे (जो तुम्हें रसूलुल्लाह सल्ल० दे दें उसे लेलो और जिससे वह तुम्हें मना करें उससे रुक

आयत हैः (जो रसूलुल्लाह सल्ल० की इताअत (आज्ञापालन) करता है वह गोया ख़ुदा ही की इताअत करता है। (८०:४) तो यह आयत और इस तरह की दूसरी आयतें हमें बताती है। मान लीजिये कि एक सफ़ीर (प्रतिनिधि) किसी बादशाह की तरफ़ से दूसरे बादशाह के पास एक पत्र लेकर जाता है। ज़ाहिर है कि पत्र में ज़्यादा तफ़्सीलें नहीं होंगी लेकिन जिस मसले के लिये सफ़ीर भेजा जाता है इस मसले पर जब गुफ्तुगु होगी तो सफ़ीर का बयान किया हुआ हर हर लफ़्ज़ भेजने वाले बादशाह ही का पैग़ाम समझा जाऐगा। इस मिसाल के बयान करने से मेरा मन्शा यह है कि हक़ीक़त में हदीस और क़ुरआन एक ही चीज़ हैं दोनो का दर्जा बिल्कुल बराबर है। एक मिसाल से मेरा मफ़हूम आप पर ज़्यादा स्पष्ट हो जायेगा मान लीजिये कि आज रसूलुल्लाह सल्ल० ज़िन्दा हों और हममें से कोई हुज़ूर सल्ल० की ख़िदमत में हाज़िर होकर इस्लाम क़ुबूल करने का एलान करे और उसके बाद रसूलुल्लाह सल्ल० से सम्बोधित होकर यह गंवार व्यक्ति अगर यह कहे कि यह तो क़ुरआन है ख़ुदा का कलाम है, मैं इसे मानता हूँ मगर यह आप का कलाम है और हदीस है इस पर मेरे लिये अमल करना ज़रुरी नहीं है, तो इसका नतीजा यह होगा कि फ़ौरन ही उस व्यक्ति को उम्मत से ख़ारिज क़रार दे दिया जायेगा और यक़ीनन अगर हज़रत उमर रज़ि० वहाँ पर मौजूद हों तो अपनी तलवार खींच कर कहेंगे या रसूलुल्लाह सल्ल० इजाज़त दीजिये कि मैं इस काफ़िर और मुर्तद (दीन से निकल जाने वाला) का सर कलम कर

दूँ। ग़र्ज़ रसूलुल्लाह सल्ल० की मौजूदगी में यह कहना कि यह आपकी निजी बात है और मुझे इस पर अमल करना ज़रुरी नहीं है। मानो एक ऐसा वाक्य है जो इस्लाम से निकल जाने के बराबर समझा जायेगा। इस लिहाज़ से रसूलुल्लाह सल्ल० जो भी हमें हुक्म दें उसकी हैसीयत बिल्कुल वही है जो अल्लाह के हुक्म की है। दोनों में जो फ़र्क है वह इस वजह से पैदा हुआ है कि क़ुरआन मजीद का संकलन और क़ुरआन मजीद की हिफ़ाज़त विशेष से अमल में आयी है और हदीस का संकलन और हदीस की हिफ़ाज़त दूसरी तरह से इसलिये शोध और सूबूत का मसला पैदा हो जाता है। रसूलुल्लाह सल्ल० की मौजूदगी में तो सुबूत का कोई प्रश्न ही नहीं था। हुज़ूर सल्ल० की ज़बाने मुबारक से जो भी इरशाद हुआ वह यक़ीनी तौर पर रसूलुल्लाह सल्ल० का हुक्म था लेकिन बाद के ज़माने में यह बात नहीं रहती। मैं हदीस सुन कर आपसे बयान करता हूँ। रसूलुल्लाह सल्ल० बिल्कुल सच्चे हैं लेकिन मैं झूठा हो सकता हूँ। मुझमें इन्सानी कमज़ोरी की वजह से कमियां होंगी। मुम्किन है मेरी याददाश्त मुझे धोका दे रही हो, मुम्किन है मुझे ग़लतफ़हमी हुई हो मुम्किन है मैंने ग़लत सुना हो किसी वजह से, मसलन ध्यान कम होने की वजह से या कोई चीज़ हरकत में थी उसके शोर की वजह से मैंने कोई लफ़्ज़ नहीं सुना तो ख़ल्त मुबहस (गुफ्तगु के दरम्यान दूसरी लाना) पैदा हो गया। ग़र्ज़ अनेक वजहों से रसूलुल्लाह सल्ल० के बाद हदीस यानी रसूलुल्लाह सल्ल० के आदेशों को दूसरों तक पहुंचाना इतना यक़ीनी नहीं रहता जितना

क़ुरआन का यक़ीनी है। क़ुरआन मजीद को ख़ुद रसूलुल्लाह सल्ल० ने अपनी देखरेख में संकलित कराया और उसकी हिफ़ाज़त के लिये वह तदबीरें इख़्तियार किये जो इससे पहले किसी पैग़म्बर ने नहीं की थीं या कम से कम इतिहास में उसकी नज़ीर हमें नहीं मिलती। मगर हदीस के ताल्लुक़ से ऐसी सूरत पेश नहीं आयी और उसकी वजह मुम्किन है। रसूले अकरम सल्ल० की आदते मुबारका का यह पहलू भी हो कि आप में तो तवाज़ो (नम्रता) बहुत थी। अपने आप को महज़ इन्सान समझते थे। इन्नमा अना बशरुम मिसलकुम (मैं तुम जैसा इंसान हूँ) यह ख़्याल आप सल्ल० पर ज़्यादा ग़ालिब रहता था, इस ख़्याल की अपेक्षा कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ। शायद यह तसव्वुर रहा हो या कोई और बहरहाल रसूल अकरम सल्ल० ने हदीस के संकलन पर वह तवज्जो न फ़रमाई जो क़ुरआन मजीद के ताल्लुक से रही। उसकी वजह एक और भी है जो बहुत अहम है वह यह कि क़रआन करीम में ''वमा अनतक़ा अनिलहवा अन हुवल वही यूहा (३,४ : ५३) के ज़रिये से यह स्पष्ट किया गया है कि जो कुछ रसूलुल्लाह सल्ल० तुमसे बयान करते हैं वह अपनी ख़्वाहिश से नहीं करते बल्कि वह अल्लाह की वही होती है। इस तरह हमें यक़ीन दिलाया गया है कि रसूलुल्लाह सल्ल० जो भी बयान करते हैं वह ख़ुदा की वही पर निर्भर होती है जब वही आती आप सल्ल० उसमें ग़ल्ती नहीं करते उसे ठीक-ठीक उसी तरह पहुँचाते हैं लेकिन अगर वही न आये तो इन्तेज़ार करते हैं। क्योंकि वही पैग़म्बर के इख़्तेयार में

नहीं। जब ख़ुदा चाहता वही करता है और जब वह नहीं चाहता तो रसूलुल्लाह सल्ल० के लिये सिवाए इन्तिज़ार के और कोई चारा नहीं होता और वह अपनी तरफ़ से कुछ कह कर, मनघढ़ंत तौर से अपनी बात को वहीये में इलाही नही कह सकते। हमें हदीस में ऐसी काफ़ी मिसालें मिलती हैं जिनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बाज़ दीनी मामलात में आप सल्ल० मशविरा (परामर्श) भी करते थे। मिसाल के तौर पर एक हदीस में है कि रसूल अकरम सल्ल० ने कुछ आदेश दिये। सहाबा ने कहा कि क्या यह वही पर आधारित है। आप सल्ल० ने जवाब दिया कि अगर वही पर आधारित होते तो मैं तुमसे परार्मश न करता। एक दूसरी हदीस बहुत दिलचस्प है जो खजूर के पेड़ों से संबधित है। आप सल्ल० जब मदीना तशरीफ़ लाये और वहाँ देखा कि नर पौधों के फूल मादा फूल के अन्दर डाले जाते हैं गोया इस अमल की वजह से खजूर ज़्यादा पैदा होती है। आप सल्ल० की तबियत में जो हया और शर्म थी उसकी वजह से आप सल्ल० को यह अमल पसन्द नहीं आया और कहा कि नर और मादा में ताल्लुक़ पैदा करना पौधों में मुनासिब नहीं है, बेहतर है कि तुम यह न करो। लोगों ने जब इस हुक्म पर अमल किया तो खजूर की पैदावार उस साल बहुत खराब हो गयी। सब लोग आये और अर्ज़ किया या रसूलुल्लाह सल्ल० हमने इस साल बीज डालने का (Pollination) का अमल नहीं किया जिसकी वजह से खजूर पैदा नहीं हुयी इस पर (तिरमिज़ी शरीफ़ वग़ैरह की हदीसों के मुताबिक़) आप सल्ल०

का जवाब यह थाः तुम अपने दुनयावी मामलात में मुझसे बेहतर जानते हो, इस मिसाल से यह ज़ाहिर है कि रसूलुल्लाह सल्ल० जब कोई चीज़ वही के बगैर बयान करें तो वह एक ज़हीन, एक फ़हीम (बुद्धिमान) इन्सान का बयान तो होगा लेकिन वहीये इलाही नहीं होगी। इन्सानी चीज़ होगी और इन्सानी चीज़ में इन्सानी ख़ामियां हो सकती हैं। चुनाँचे हदीसों में इसका ज़िक्र आता है कि कभी-कभी हुज़ूर सल्ल० ने बजाए चार रकअत के तीन ही रकअत के बाद सलाम फेर लिया, या यह कि बजाए दो के तीन रकअतें पढ़ लीं भूल हो गयी, तो यह इन्सानी भूल-चूक रसूलुल्लाह सल्ल० से भी मुम्किन है और ऐसा मसलहते इलाही के तहत होता है। रसूलुल्लाह सल्ल० को ख़ुदा ने उस्वए हुस्ना (बेहतरीन नमूना) क़रार दिया है। कोई रसूल उस्वये हुस्ना और कामिल नमूना उस वक्त हो सकता है जब व इन्सानी दायरे में रहे। यानी वह ऐसा ही काम करे जिसे और इन्सान भी कर सकते हैं। इसके विपरीत अगर रसूल ''फ़ौकुल बशर'' (Super man) बन जाये तो हमारे लिये उस्वये हस्ना नहीं रहेगा। इस लिये एसी मिसालें पेश आती हैं कि फ़ज्र की नमाज़ का वक्त है रसूलुल्लाह सल्ल सो रहे हैं, उठे नहीं होते जब सूरज निकलता है तो सूरज की किरणों की गर्मी और तेज़ी से जाग जाते हैं या जैसा कि मैंने बयान किया, कभी नमाज़ पढने में रकअतों की तादाद में भूल हो जाती है या इसी तरह की चीज़ें पेश आती हैं जिनका हिकमते इलाही के तहत मन्शा और मक़सद यह होता है कि हमें यक़ीन दिलाया जाए कि रसूलुल्लाह

सल्ल० भी इन्सान ही हैं। वह जो काम करते रहे उसके ताल्लुक से कभी ख़्याल न करना चाहिये कि हम नहीं कर सकते बल्कि हम भी चाहे तो वैसा काम कर सकते हैं जैसा कि रसूलुल्लाह सल्ल० करते हैं। इस सिलसिले में याद रहे, रसूले अकरम सल्ल० का हमेशा तरीकये अमल यह रहा कि ऐसे काम न करें जो उम्मत की ताक़त से परे हों और उनकी क़ूव्वत से बाहर हों। मिसाल के तौर पर ''विसाल'' नामी रोज़े का मैं आप से ज़िक्र करुँगा। ''विसाल'' के मायने यह है कि चौबिस घन्टे की जगह अड़तालिस घन्टे का रोज़ा रखा जाए। इससे रसूलुल्लाह सल्ल० सख्ती से मना फ़रमाते थे और कहते थे कि चौबिस घन्टे का भी रोज़ा न रखो बल्कि सहरी करो और इस बात पर बहुत ज़ोर देते थे। एक मर्तबा सहाबा रज़ि० ने कहा या रसूलुल्लाह सल्ल० आप तो हमें हुक्म देते हैं, यूँ करो मगर ख़ुद आप सल्ल० का तरीकये अमल उसके ख़िलाफ़ है। हम भी वैसा ही करना चाहते हैं। तो हदीस में एक दिलचस्प ज़िक्र आया है कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने कहा अच्छा कोशिश करके देखो आप सल्ल० चौबिस घन्टे रोज़ा रखा, इफ्तार नहीं किया, उसे और बढ़ाया अडतालिस घन्टे गुज़रे। अब लोगों को सख़्त परेशानी हुयी। संयोग से शव्वाल का चाँद २९ तारीख को नज़र आ गया, इसकी वजह से यह सिलसिला रुक गया वरना रिवायत करने वाले इस हदीस में यह बयान करते हैं कि अगर उस दिन चाँद नज़र न आता तो रसूलुल्लाह सल्ल० शायद ७२ घन्टे का रोज़ा रखते। फिर उन लोगों को पता चलता कि रसूलुल्लाह सल्ल० की पैरवी करने

की जो ख़्वाहिश रखते हैं वह तुम्हारे लिये मुनासिब नहीं है। उम्मत के लिये मसलहत यही है कि रसूलुल्लाह सल्ल० के हुक्म पर अमल करें, यह नहीं कि रसूलुल्लाह सल्ल० की पैरवी में वह काम करना चाहें जो उनके बस की चीज़ नहीं। मुम्किन है कोई एक शख्स ऐसा कर सके लेकिन आम लोग ज़ईफ़ और कमज़ोर लोग होते हैं वह ऐसा नहीं कर सकते। गर्ज़ हदीस की अहमियत क़ुरआन की अहमियत से किसी तरह कम नहीं। अगर इन दोनों में फ़र्क़ है तो इस क़दर कि हदीस का सबूत हमें इस तरह का नहीं मिलता जिस तरह क़ुरआन के ताल्लुक से मिलता है कि लगातार चौदह साल से उसके एक-एक लफ़्ज़, एक-एक नुक़्ते और एक-एक हर्फ के बारे में हमें कामिल यक़ीन है कि रसूलुल्लाह सल्ल० के ज़माने का जा क़ुरआन था वही अब भी बाक़ी है। हदीस के ताल्लुक से ऐसा नहीं हुआ।

इस प्रस्तावना के बाद मैं आप से यह अर्ज़ करुँगा कि क़ुरआन की तरह चीज़ें और क़ौमों में भी मिलती है मसलन यहूदियों के यहाँ तौरैत अल्लाह की नाज़िल करदा किताब है। या मसलन और क़ौमों के यहाँ भी दावा है कि ख़ुदा की भेजी हुई किताबें हैं, तो क़ुरआन की तरह की आसमानी किताबों की मिसालें हमें मिलती हैं लेकिन हदीस की तरह की चीज़ें दूसरी कौमों में मुझे नज़र नहीं आती। बुद्ध मत में ऐसी चीज़ें मौजूद है मगर उसकी अहमियत वह नहीं जो हमारे यहाँ हदीस की है। बुद्ध मत की बुनयादी किताबें उसी क़िस्म की है जैसे हमारे यहाँ 'मलफ़ूज़ात'

के नाम से मशहूर शब्द संकलन हैं जिनमें किसी वली किसी बुज़ुर्ग किसी मुर्शिद के कथनों को उनके मुरीदों (भक्तों) में से किसी ने नोट कर लिया है। गो तुम बुद्ध के मलफूज़ात (कथन संग्रह) भी सिर्फ़ एक व्यक्ति का संकलन है लेकिन हदीस के समान कोई ऐसी चीज़ नहीं मिलती, कि बहुत से अहले ईमान अपने देखे हुये और सुने हुये मैटर को जमा करके बाद वालों तक पहुँचाने की कोशिश करें, जैसा कि हदीस के संकलनों में कोशिश की गयी है। यह बात दूसरों के यहाँ गायब है। गोया हदीस एक ऐसा इल्म है और हदीस के मुन्र्दजात ऐसी चीज़ें हैं जिनके समान कोई और चीज़ें दूसरे धर्मों में हमें नज़र नहीं आती। इन हालात में तुलनात्मक अध्ययन की सम्भावना बाक़ी नहीं रहती लिहाज़ा सीधे तौर पर रसूले अकरम सल्ल० की हदीस की तारीख़ ही पर इत्मीनान करना पड़ेगा।

हदीस के सिलसिले में पहले तो कुछ शब्दावली का बयान करना मुनासिब मालूम होता है। एक लफ़्ज़ हदीस है और एक लफ़्ज़ सुन्नत, अब यह दोनों लगभग समनार्थक शब्द समझे जाते हैं। हदीस से तात्पर्य वही है जो सुन्नत का मफ़हूम है, यानी रसूल अकरम सल्ल० की बयान की हुयी चीज़ें, रसूलुल्लाह सल्ल० के अमल करदा मामलात जिनका तज़किरा किसी देखने वाले की तरफ़ से हो कि मैंने देखा रसूलुल्लाह सल्ल० ने यह कहा या यूँ किया और तीसरे वह मामले जिन्हें हमारे संकलनकर्ता ''तक़रीर'' की इस्तलाह (Term) से ताबीर करते हैं यानी वह मामले जिनको रसूले अकरम सल्ल० ने बरक़रार रखा और उससे मुराद यह है

कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने अपने किसी सहाबी को कोई काम करते हुये देखा और उसे उससे मना न किया या ख़ामोश रहे तो गोया अपनी ख़ामोशी से आपने इस अमल को बरक़रार रखा। यानी आपकी ख़ामोशी से भी इस्लामी क़ानून बन जाता है, क्योंकि रसूलुल्लाह सल्ल० का यह फ़रीज़ा है कि वह किसी बुराई को देखें तो ''नही अनिल मुनकर'' करें यानी अपने सहाबी के किसी ऐसे काम को जो इस्लाम के मुताबिक़ नहीं है आप सल्ल० माफ़ तो कर देगें कि इस सहाबी ने ग़फ़लत से या नावाक़फ़ियत से किया है लेकिन उसे रोकेंगे ज़रुर कि आइन्दा ऐसा न करे। मुख़्तसर यह कि हदीस से सम्बंधित तीन चीज़ें पायी जाती हैं एक रसूलुल्लाह सल्ल० का कथन, दूसरा रसूलुल्लाह सल्ल० का अमल, तीसरा रसूलुल्लाह सल्ल० का किसी दूसरे के कथन और काम को बरक़रार रखना यानी इस्तलाही तौर पर रसूलुल्लाह सल्ल० की ''तक़रीर''। पहली दो इस्तलाहों यानी हदीस और सुन्नत में अब तो कोई फ़र्क़ नहीं लेकिन शुरु में फ़र्क़ था। हदीस के मायने ''बोलना'' यानी क़ौल व कथन और सुन्नत के मायने हैं ''तर्ज़े अमल'' अब गोया क़ौल और फ़ेल दोनों एक ही तरह की चीज़ें हो गयी हैं क्योंकि अक्सर सहाबा की नक़ल की हुयी रिवायत में रसूलुल्लाह सल्ल० का क़ौल भी होता है और रसूलुल्लाह सल्ल० का अमल भी। मगर इसके लिये हदीस को हदीस और सुन्नत को तक़सीम करके इनको अलग-अलग जमा करना नामुम्किन बात थी। इसलिये कसरते इस्तेमाल से हदीस से तात्पर्य कथन भी है

और कर्म भी। इसी तरह सुन्नत से तात्पर्य कथन भी है और अमल भी हो गया। अब अमली तौर पर उनमें कोई फ़र्क़ बाक़ी नहीं है जहाँ तक मेरे इल्म में है।

हदीस और क़ुरआन के दरम्यान एक तीसरी चीज़ भी आती है उससे भी वाक़फियत हो जानी चाहिये। अगर्चे इसमें और हदीस में कोई बड़ा फ़र्क़ नहीं है, लेकिन एक हद तक फ़र्क़ ज़रुर है वह चीज़ है हदीसे क़ुदसी। हदीसे क़ुदसी के मायने है रसूलुल्लाह सल्ल० की बयान की हुयी हदीस जिसके शुरु में यह अल्फ़ाज़ आते हैं ''अल्लाह कहता है कि ..... फ़लाँ-फ़लाँ'' यूँ हम कह सकते हैं हदीस सारी ही अल्लाह के इलहाम पर निर्भर है क्योंकि यह वमा यन्तिक़ु अनिलहवा इन हुवा इल्ला वहीयूं यूहा'' (३,४:५३) की आयत के मुताबिक है लेकिन अगर हदीस में ख़ुद रसूलुल्लाह सल्ल० बज़ाहिर फ़रमायें कि अल्लाह कहता है कि फ़लाँ चीज़, तो उसको हमारे संकलनकर्ता एक मुस्तक़िल दर्जे में रखते हैं और उसे ''हदीसे क़ुदसी'' का नाम देते हैं। हाँ उसकी रिवायत, उसका एक दौर से दूसरे दौर तक मुन्तक़िल होना बिल्कुल इसी तरह हुआ जिस तरह आम हदीसों का है। हम उनमें कोई फ़र्क़ नहीं पाते हैं। ऐसी हदीस की शुरुआत आम तौर से इस तरह होती है कि ''अल्लाह'' तआला ख़ुद कहता है कि मैं ऐसा करुँगा तो ख़ुदा ख़ुद कलाम करता है और उसको रसूलुल्लाह सल्ल० हम तक पहुँचाते हैं। इस विषय पर पुराने ज़माने ही से अनेक संकलनकर्ताओं ने किताबें लिखीं हैं जो हम तक पहुँची हैं। कुछ छप भी गयी हैं। और

कुछ मुम्किन है अभी तक क़लमी (हस्तलिखित) हालत में मौजूद हों। इस मौक़े पर आप की दिलचस्पी के लिये एक वाक़िया सुनाता हूँ। पेरिस में एक नौमुस्लिम लड़की आजकल इस विषय पर अपने पी०एच०डी० की थेसिस तैयार कर रही है उस लड़की का नाम आयशा है। यह बहुत ज़हीन लड़की है दो साल हुए उसने अरबी शुरु की और अब इस दर्जे की अरबी उसे आ गयी है कि रियाज़ुस्सालेहीन नामी सात आठ सौ पन्नों की मोटी किताब का अनुवाद अरबी से उसने फ्रेन्च में कर डाला है और अब एक थेसिस लिख रही है उस विषय पर कि हदीसे क़ुदसी क्या है और एसी हदीसों के अन्दर क्या-क्या चीज़ें मिलती हैं वग़ैरा वग़ैरा। उसमें हर चीज़ हदीसे क़ुदसी की व्याख्या के साथ आयेगी। हदीस क़ुदसी के दो चार पत्रिकायें जो हासिल हैं उनमें से भी बाज़ का अनुवाद कर रही है ताकि थेसिस में शामिल कर सके।

हदीस की दो बड़ी क़िस्में बयान की जा सकती हैं। एक सरकारी काग़जात और दूसरे सहाबा का अपने तौर पर रसूलुल्लाह सल्ल० के क़ौल और फ़ेल का जमा करना। मैं सर्वप्रथम पहली चीज़ का ज़िक्र करुंगा यानी सरकारी दस्तावेज़ या सरकारी तहरीरें। हिजरत से पहले ही हमें चन्द चीज़ों का पता चलता है मसलन आप वाक़िफ़ है कि तक़रीबन ५ नबुवत में हिजरत से सात आठ साल पहले मक्के में जब मुश्रिकीन मक्का ने मुसलमानों पर ज़ुल्म व ज़्यादती किया तो कुछ लोग रसूलुल्लाह सल्ल० के हुक्म और रसूलुल्लाह की इजाज़त से हब्शा हिजरत कर

गये इस सिलसिले में एक दस्तावेज़ (लेखपत्र) हमें मिलता है। मुम्किन है आप में से बाज़ उससे वाक़िफ़ भी हों कि उसका ज़िक्र सीरत की किताबों में भी आता है। यह एक खत है जो रसूलुल्लाह सल्ल० ने अपने चचा ज़ाद भाई हज़रत जाफ़र तय्यार को दिया कि यह खत नज्जाशी को जो हब्शा का हाकिम था पहुँचा दें। उसके आखिर में अल्फाज़ यह हैं।

''मैं अपने चचा ज़ाद भाई जाफर को तेरे पास भेज रहा हूँ उसके साथ कुछ और भी मुसलमान हैं जब यह तेरे पास पहुँचे तो उनकी मेहमानदारी करना।''

ज़ाहिर है कि ख़त पर तारीख न होने के बावजूद यह ख़त हिजरते हब्शा ही के ज़माने का हो सकता है। इसी तरह हमें उस ज़माने की एक और चीज़ मिलती है जो काफी दिलचस्प कही जा सकती है। बाज़ लोगों को उस पर हैरत भी होती है। यह तमीम दारी का वाक़िया है। तमीमदारी शाम के रहने वाले एक ईसाई थे। वह मक्का आते हैं, इस्लाम क़ुबुल करते हैं और फिर अपने क़िस्से भी बयान करते हैं। वह एक जहाज़रान (जहाज़ चलाने वाले) थे बहुत से समन्दरी सफर कर चुके थे जिन का तफ्सील के साथ सही मुस्लिम में ज़िक्र आया है। तमीमदारी ने हुज़ूर अकरम सल्ल० से यह कहा कि मुझे यक़ीन है कि आप सल्ल० की फौज बहुत जल्द मेरे वतन यानी शाम को फतेह करेगी। जब यह हो तो मुझे फ़लाँ-फ़लाँ गाँव बतौर जागीर इनायत फरमायें। तारीखी किताबों के मुताबिक रसूलुल्लाह सल्ल० ने एक आदेशपत्र लिखवाया और

उसको दिया। उस के अल्फाज़ यह हैं कि अगर मरतूम, हिब्रोन (और कुछ गाँव के नाम हैं) वग़ैरा फ़तह हो जायें तो तमीम दारी को दिये जायें। ग़र्ज़ यह भी हिजरत मदीना से पहले की तहरीरी चीज़ों में एक चीज़ कही जाती है। इसी तरह कुछ और चीज़ें भी हमें मिलती है। दूसरा मुख्तसर दौर हिजरत का वक्त है। मिसाल के तौर पर सुराक़ा बिन मालिक का वाक़िया है कि उसने रसूलुल्लाह सल्ल० का पीछा किया। चाहा कि आप सल्ल० को गिरफ्तार करले और कुरैश के हाथ हुज़ूर सल्ल० को बेच दे, क्योंकि कुरैश ने एलान किया था जो रसूलुल्लाह को गिरफ्तार करेगा उसे इतना ईनाम दिया जाएगा वगैरा-वगैरा। इस दरम्यान कई चमत्कार भी पेश आए। कहते हैं कि आखिर में सुराक़ा ने माफ़ी चाही। हुज़ूर सल्ल० ने उसे माफ़ किया तो उस पर उसने दरख्वास्त की कि मुझे अमन का परवाना दिया जाए। हमारे रिवायत करने वाले बयान करते हैं कि इस हिजरत के वक्त हुज़ूर सल्ल० के साथ दवात क़लम और काग़ज भी मौजूद था और हुज़ूर सल्ल० के साथियों में लिखना पढ़ना जानने वाला एक गुलाम भी मौजूद था जिसका नाम आमिर बिन फहीरा था। चुनाँचे उसको हुज़ूर सल्ल० ने इम्ला (Dictation) करवाया। जिसमें सुराक़ा बिन मालिक को रसूलुल्लाह सल्ल० की तरफ़ से अमन और पनाह देने का ज़िक्र था। बाद में सुराक़ा मुसलमान हो गया और जिस वक्त वह मुसलमान होने के लिये आया उसने बताया कि आप सल्ल० का दिया हुआ हुक्मनामा मेरे पास है चुनाँचे इस तहरीर की

बुनियाद पर सहाबा रज़ि० ने उसे क़रीब होने का मौक़ा दिया बावजूद के वह रसूलुल्लाह सल्ल० तक पहुँच गया और गुफ्तुगु की। इसे हिजरत के ज़माने की तहरीरों में शामिल किया जायेगा। एसी चीज़ें ज़्यादा तो नहीं हैं। यकीनन दौराने हिजरत की यह वाहिद मिसाल है। मगर जब हुज़ूर सल्ल० मदीना मुनव्वरा पहुँचे तो अब सरकारी तहरीरों की तादाद रोज़ बरोज़ बढ़ती चली गयी। उनमें कुछ सरकारी काग़ज़ात हैं और कुछ तहरीरें खालिस प्राइवेट किस्म की हैं, बाज़ तहरीरें ऐसी हैं जिन की कोई उम्मीद भी नहीं हो सकती कि ऐसी चीज़ें भी उस ज़माने में पायी जाती रही होंगी। मसलन सही बुखारी में है कि एक मर्तबा हुज़ूर सल्ल० ने हुक्म दिया कि जितने लोग मुसलमान हुऐ हैं उनके नाम लिखो चुनांचे मरदुम शुमारी (जनगणना) की गयी। सही बुखारी के मुताबिक़ इस रजिस्टर में पन्द्रह सौ नाम लिखे गये। मर्दो औरतों, बच्चों और बूढ़ों सब की तादाद पन्द्रह सौ थी। अगर्चे बुखारी की रिवायत में यह स्पष्ट नहीं है कि यह किस साल का वाक़िया है। लेकिन पन्द्रह सौ की तादाद ऐसी हैं कि मेरे ख्याल में हिजरत से ठीक बाद की मालूम होती है। मान लीजिये कि मक्का से आये हुऐ महाजिरों के खानदान दो सौ होंगे तो पाँच सौ के लगभग लोगों की तादाद होनी चाहियें। इसी तरह इसमें मदीना मुनव्वरा के मुसलमान भी होंगे तो इस पन्द्रह सौ मुसलमानों का होना हिजरत के शुरुआती दिनों का वाक़िया मालूम होता है, बहुत बाद का नहीं, क्योंकि बाद में मुसलमानों की तादाद इतनी ज़्यादा हो गयी कि गिना नहीं जा

सकता। मसलन आखिरी हज में एक लाख चालीस हज़ार लोग हज अदा करने आऐ थे, तो पन्द्रह सौ और एक लाख चालीस हज़ार में ज़ाहिर है कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता, मरदुम शुमारी (जनगणना) के अलावा एक और चीज़ भी मिलती है जिसका सम्बन्ध सम्भवता १ हिजरी से हैं उसकी भी हमें कोई उम्मीद नहीं थी। यह भी एक अजीब व ग़रीब चीज़ है। पहले मैं यह बता दूँ कि यह एक मुल्क का संविधान है। उसकी ज़रुरत क्यों पेश आई? जैसा कि मालूम है कि हिजरत के मौक़े पर कुरैश की ज़्यादतियों की वजह से मक्के के मुसलमान और आख़िर में खुद रसूलुल्लाह सल्ल० हिजरत करके मदीने चले आये थे। अब अगर क़ुरैश चुप रहते तो शायद मुसलमान जल्द ही अपनी मुसीबत अपनी जायदाद की तबाही अपने वतन से बेवतनी वगैरह को भी भूल जाते और नये मुल्क और नये वतन में नयी ज़िन्दगी की शुरुआत कर लेते लेकिन क़ुरैशे मक्का ने उनको चैन नहीं लेने दिया। कुरशियों को यह देख कर कि उनके दुश्मन रसूलुल्लाह सल्ल० उनके हाथ से बच कर चले गये हैं इतनी जलन हुयी और इतना ग़ुस्सा आया कि मदीना वालों को एक खत लिखा जिसका खुलासा (सार) यह है कि हमारा दुशमन तुम्हारी मुल्क में आया है या तो उसको मार डालो या उसको अपने मुल्क से निकाल दो, वरना हम मुनासिब तदबीरें इख्तियार करेंगे। ज़ाहिर है कि मदीने के मुसलमान उनमें से किसी बात को क़ुबूल नहीं कर सकते थे। आखिरी धमकी या चेतावनी कि हम मुनासिब तदबीरें इख्तियार करेगें। अगर कोई हुक्मरां

जाहिल या ग़ाफिल होता तो उसको ग़ैर अहम चीज़ समझ कर नज़र अन्दाज़ कर देता लेकिन जिस नबी सल्ल० को उस्वये हस्ना (बेहतरीन नमूना) बनना था उनके लिये ज़रुरी था कि अपने बाद आने वाले हुक्मरानों को बतायें कि इन हालात में क्या करना चाहिये। यानी दुशमन खास कर क़वी से अपने और अपनी क़ौम के स्वार्थ को सुरक्षित रखने के लिये क्या तदाबीरें इख्तियार करना चाहिये? चुनांचे आप सल्ल० ने दो तीन एहतियाती तदाबीरें इख्तियार फ़रमाईं। पहली तदबीर यह थी कि जो लोग हिजरत करके बेवतन होकर एक नये मुल्क में आए थे और जिनके पास उनके बदन के कपड़ों के सिवा कोई चीज़ न थी उनके गुज़र बसर का इन्तेज़ाम किया। आप लोगों को पाकिस्तान में महाजिरों की समस्याओं से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं कि यह कितना मुश्किल काम है। बरसों गुज़र जाने के बाद भी महाजिरों की सारी गुत्थियां, सारी मुश्किलें हल नहीं हो पाइं और फिर इन पृयाप्त संसाधनों के बावजूद जो मौजूदा ज़माने में हमारे पास हैं और बावजूद उस हक़ीक़त के कि हमारी हुकूमत की आमदनी करोड़ों रुपये की है, हम महाजिरों के मसाएल आसानी से हल नहीं कर सके। पाकिस्तान ही में नहीं जर्मनी वगैरा जैसे बहुत से मुलकों में यह वाक़ियात पेश आए हैं। और हर जगह यह एक निहायत ही मुश्किल और जटिल समस्या रही है जो लोग मदीना आए थे उनकी तादाद अगर्चे ज़्यादा नहीं थी शायद चन्द सौ आदमी होंगे लेकिन उस ज़माने में संसाधन बहुत कम थे। उन चन्द सौ आदमियों को एक छोटी सी बस्ती में मुस्तक़िल गुज़र बसर के संसाधन जुटा देना आसान काम नहीं था। तक़रीबन उतना ही मुश्किल काम था जितना किसी बड़े मुल्क में आज कल मसलन एक हज़ार की जगह

एक लाख या दस लाख लोगों का आना। तो एसी ही परेशानी उस वक्त पैदा हुइ होगी। मगर उस मुश्किल को रसूलुल्लाह सल्ल० ने अपनी सियासी दूरअन्देशी से एक लम्हे में हल कर लिया। आप सल्ल० ने मदीना के उन लोगों को बुलाया जो कुछ खुशहाल थे और साथ ही महाजिरों के उन नुमाइन्दों को बुलाया जो अपने अपने खानदान के अगुवा थे। जब दोनों जमा हो गये तो हुज़ूर सल्ल० ने महाजिरों की सिफारिश करते हुए अन्सार से सम्बोधित हुये कि यह तुम्हारे भाई हैं, तुम्हारे ही दीन वाले हैं और उस दीन की खातिर अपने वतन अपने मुल्क और अपनी हर चीज़ को छोड़ कर यहाँ आए हैं। इसलिये तुम्हारी ज़िम्मेदारी है कि उनकी मदद करो। आप सल्ल० ने सलाह दी कि अन्सार में से हर खानदान मक्का वालों के एक खानदान को अपने खानदान में शामिल करले। मवाख़ात या भाईचारा का मफहूम यह नहीं था कि यह कोई तुफ़ैली Parasite के तौर पर मुफ्त खोरी करने वाले मेहमानों की तरह रहें। आप सल्ल० ने फरमाया कि अब बजाए छोटे खानदान के बड़ा खानदान होगा और दोनों खानदान काम करेंगे जब काम ज़्यादा किया जाएगा तो आमदनी ज़्यादा होगी। आमदनी ज़्यादा होगी तो दोनों की गुज़र बसर का इन्तेज़ाम आसानी से हो सकेगा। कोई शख्स किसी खानदान पर बोझ नहीं बनेगा। इसलिये सब ही ने यह तजवीज़ बखुशी क़ुबूल करली। मवाखात (भाईचारा) के उस उसूलों का यह नतीजा निकला कि कई सौ खानदान एक लम्हे में गुज़र-बसर के इन्तेज़ामात हासिल करने के क़ाबिल हो गये। और फिर उसके बाद कभी यह सवाल

ही पैदा नहीं हुआ कि कौन ख़ुशहाल है और कौन बेरोज़गार है कौन पनाह देने वाला है और कौन बाहर से आया हुआ महाजिर है। इस अहम काम से फ़ुर्सत होने के बाद रसूले अकरम सल्ल० ने एक बात की तरफ तवज्जो फरमाई वह यह कि उस ज़माने से पहले यानी रसूले अकरम सल्ल० की हिजरत से पहले मदीना में कोई रियासत या हुकूमत नहीं पायी जाती थी। वहाँ आबादी का एक गिरोह था जो क़बीलों में बटा हुआ था। तक़रीबन पच्चीस तीस क़बीले थे और हर क़बीला दूसरे क़बीले से उतना ही आज़ाद और उतना ही ख़ुद मुख्तार (स्वाधीन) था जितना आज कल की दुनिया की बड़ी सल्तनतें होती हैं और उस ख़ुद-मुख्तारी (स्वाधीनता) का नतीजा भी वही था जो आज़ाद हुकूमतों में होता है यानी आपस में जंग भी होती है। हमारे इतिहासकारों ने लिखा है कि मदीने के अन्सार दर हक़ीक़त दो बड़े क़बीलों में बटें हुऐ थे (बल्कि दो बड़े गिरोहों में और हर गिरोह में कई क़बीले थे) यानी औस और खिज़रज। इन दोनों में एक सौ बीस साल से खाना जंगियों का सिलसिला जारी था। ज़ाहिर है कि जब दो कबीलों में जंग हो रही हो तो दोनों की संयुक्त हुकुमत का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। मदीना में इन अरबों के अलावा और भी लोग आबाद थे, मसलन यहूदियों के क़बीले भी वहाँ थे। उनकी लगभग हज़ार की आबादी थी अन्दाज़न आधी आबादी यहूदियों पर आधारित थी और आधी आबादी अरबों पर। यहूदियों के अलावा कुछ ईसाई भी थे जिनकी सही तादाद मालूम नहीं। एक रिवायत में पन्द्रह, एक

रिवायत में पचास का ज़िक्र मिलता है और यह क़बीला औस के अन्दर थे।

बहरहाल इस आबादी में जिसमें यकजहती (एकता) नहीं पायी जाती थी, ऐसा इन्तेज़ाम करना कि सब की संयुक्त हुकूमत क़ायम हो यह बज़ाहिर ख़्वाब व ख़्याल की बात मालूम होती है। मगर उसकी ज़रुरत थी इसलिये रसूलुल्लाह सल्ल० ने महाजिरों की मवाखात (भाईचारा) के ज़रिये से गुज़र-बसर का इन्तेज़ाम करने के बाद जो काम किया वह यह था कि उन सारे गिरोहों के नुमाइन्दों को अपने पास बुलाया, मुसलमान भी, यहूदी भी, सही बुखारी में हज़रत अनस रज़ि० का बयान है कि मेरे वालिद के मकान पर लोग जमा हुये। उसमें यहूदियों के नुमाइन्दें भी थे, खज़रज के भी, इस्लाम कुबूल करने वाले औस और खज़रज के नुमाइन्दे भी और वह भी जो अब तक मुसलमान नहीं हुए थे, और महाजिरों के नुमाइन्दे भी थे। उन सब को जमा किया और उनसे सम्बोधित होकर ग़ालिबन यह फरमाया (क्योंकि स्पष्टता नहीं मिलती कि इज्तेमा में क्या चीज़ शुरु में पेश आई) कि आप उस वक्त मुख्तलिफ़ क़बीलों में बटे हुए हैं और बिल्कुल एक दूसरे से आज़ाद हैं और नतीजा यह है कि अगर एक क़बीला पर उसका दुशमन बाहर से हमलावर होता है तो बाक़ी सब लोग ग़ैर जानिबदार होते हैं और उस क़बीले को दुशमन की संगक्रित .क़ूव्वत से तन्हा मुक़ाबला करना पड़ता है। ऐन मुम्किन है कि उसे शिकस्त हो। फिर कुछ दिनों के बाद दूसरे क़बीले पर कोई बाहरी

हमला वर हो और उसी तरह तीसरे और चौथे पर, तो नतीजा यही होगा कि धीरे-धीरे दुशमनों के हाथों सब खत्म हो जाओगे। इसलिये यह मुनासिब नहीं कि तुम सब क़बीले अपनी एक संयुक्त हुकूमत क़ायम करो ताकि तुम्हारी संयुक्त हुकूमत के सबब दुशमन को भी यह खौफ़ हो कि हमारा एक दुशमन नहीं बल्कि बहुत से क़बीले वहाँ मौजूद हैं, वह सब हमारा मुक़ाबला करेंगे और हम अपनी तन्हा .कूव्वत पर उस सारे शहर मदीना का मुक़ाबला नहीं कर सकते। यह एक संयुक्त सन्धि है जो दुशमनों से तुम्हारी हिफ़ाज़त तुम्हारी आर्थिक और माली फ़ायदों की ज़ामिन होगी। प्रस्ताव उचित था इसलिये सभी ने या कम अज़ कम अकसर क़बीलों ने क़ुबूल कर लिया। मैं समझता हूँ कि अकसर का लफ्ज़ सही है, क्योंकि इस वाक़िये का ज़िक्र मिलता है कि औस के चार क़बीले शुरु में उसमें शामिल नहीं थे।

बहरहाल मदीना वालों के इज्तेमा (सम्मेलन) का मक़सद सिर्फ यही न था जो मैंने बयान किया है कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने फरमाया होगा कि तुम्हारी संयुक्त शक्ति तुम सब की हिफ़ाज़त का ज़रिया होगी। बल्कि एक और चीज़ भी थी जिसको हम उस कानून के अन्दर देखते हैं और जिस पर सब सहमत हुये। वह यह कि हर क़बीले को बहुत से मामलों में पहले की तरह पूरी आज़ादी रहेगी। सिर्फ़ कुछ चीज़ों के ताल्लुक से यह वज़ाहत की गयी कि वह व्यक्तिगत होने के बजाये संयुक्त होंगी और मर्कज़ी हुकूमत से जुड़ी रहेंगी। उन मर्कज़ी मामलात में से एक फौजी मसला भी था

यानी जंग। अजनबियों से जंग करना और सुलह करना नाक़ाबिले तक़सीम क़रार दिया गया। यानी यह न होगा कि जंग सिर्फ एक क़बीले से हो और सुलह सिर्फ एक क़बीले से हो और बाक़ी लोग उसमे शरीक न हों बल्कि आइन्दा से सुलह और जंग नाक़ाबिले तकसीम एक संयुक्त मसला समझा जाएगा। इस तरह इन्श्योरेन्स (यानी बीमा ज़िन्दगी) का एक निज़ाम किया गया जिसकी तफ़सील में आगे बयान करुंगा। यह सब गोया संयुक्त मामले क़रार पाये।

अदालत से सम्बंधित एक हद तक क़बाइली निज़ाम बरक़रार रखा गया लेकिन अगर मुक़दमा के फ़रीक़ दो मुख्तलिफ़ क़बीलों के हों तो मर्कज़ से रुजू करना होगा, अपील कोर्ट को (अगर हम उसे कह सकें) संयुक्त क़रार दिया गया, यानी झगड़ों के आखिरी फेसले के लिये शहर के हुक्मरां से रुजू किया जायेगा। इसी तरह उसमें इस बात का भी ज़िक्र है कि मज़हबी आज़ादी होगी। यहूद के लिये यहूद का दीन रहेगा, मुसलमानों के लिये मुसलमानों का दीन, दीन में मज़हब, क़ानून और न्याय प्रक्रिया सब दाखिल समझे गये, वगैरा-वगैरा। एक दस्तावेज़ (लेखपत्र) लिखा गया हो जो हम तक लफ्ज़ ब लफ्ज़ पहुँचा है और उसकी ५२ दफायें हैं उनमें तफसील बताई गयी है कि क्या काम अन्जाम देना चाहिये। मैं कह सकता हूँ यह उस वक्त की इस्लामी हुकूमत का लिखित संविधान है।

अभी मैंने इशारे में कहा कि इसमें कुछ इन्श्योरेन्स का ज़िक्र

है। यह एक अजीब व ग़रीब चीज़ है पुराने ज़माने में वह ज़रुरतें जो आज पायी जाती हैं, नहीं पायी जाती थीं। इस ज़माने की जो ज़रुरतें थीं वह आजकल हमारे लिये बेसूद नज़र आती हैं। पुराने ज़माने में रसूले अकरम सल्ल० की ज़िन्दगी में मदीना मुनव्वरा में दो मसले बहुत अहम थे। एक यह कि अगर कोई शख्स ग़ल्ती से (जानबूझ नहीं) किसी शख्स के क़त्ल का मुजरिम होता तो उसे ख़ून बहा (खून का बदला) देना पड़ता था। ख़ून बहा की रक़म प्रचलन और क़ानून के मुताबिक़ इतनी ज़्यादा थी कि अमलन पूरी आबादी में एक-आध शख्स ही उसको अदा कर सकता था। दूसरे लोगों के लिये वह नामुमकिन सी बात थी, यानी एक सौ ऊँट की क़ीमत का अन्दाज़ा इस तरह कीजिये कि एक ऊँट सौ आदमियों के लिये दिन भर की पूरी ग़िज़ा का काम देता है। इस हिसाब से सौ ऊँट के मायने हुए दस हज़ार दिन तक एक शख्स को खाने का इन्तिज़ाम करना। यह होता था खून बहा। इतनी रक़म देना या इतना बड़ा खून बहा अदा करना हर एक के बस की बात न थी। सिवाए मालदार और सरदार क़बीले के किसी और शख्स के लिये यह नामुम्किन था। लेकिन यह वाक़ियात रोज़-रोज़ पेश आते थे इसके लिये सामूहिक बीमा का इन्तेज़ाम किया गया, यानी एक क़ातिल ही उसका ज़िम्मेदार न होगा बल्कि पूरी इन्श्योरेन्स कम्पनी उसकी ज़िम्मेदारी क़ूबूल करेगी और उसकी तरफ से खून बहा अदा करेगी। दूसरी चीज़ जिसकी उस ज़माने में ज़रुरत थी और आज हमारे ज़माने में उसकी ज़रुरत अमलन नज़र नहीं आती वह

है कि किसी शख्स को दुश्मन गिरफ्तार करके क़ैद करले तो वह फिदिया देकर अपनी आज़ादी हासिल कर लेता था। यह फिदिया की रक़म भी बहुत भारी थी यानी सौ ऊँट फिदिया देना होता था। कोई ग़रीब शख्स गिरफ्तार कर लिया जाता तो उसकी रिहाई की कोई सूरत न होती थी। वह अमलन अपने दुशमन का गुलाम बन जाता। ऐसे वक़्त में इन्श्योरेन्स कम्पनी काम देती। उसकी तरफ से ज़िम्मेदारी क़ुबूल करती और फिदिया अदा करती थी। रसूलुल्लाह सल्ल० ने यह इन्तेज़ाम किया कि मदीना मुनव्वरा में हर-हर क़बीले में एक इन्श्यूरेन्स यूनिट क़ायम हो और यह कहा कि तुम्हारे क़बीले के किसी आदमी को क़त्ल या गिरफ्तारी के सिलसिले में रक़म अदा करनी हो और वह शख्स अदा न कर सके तो यह इन्श्यूरेन्स यूनिट अदा करेगी और किसी यूनिट के पास इतनी गुन्जाइश न हो तो हुक्म था कि उसके क़रीबी मोहल्ले की इन्श्यूरेन्स यूनिट जो है वह उसके साथ सहयोग करके रक़म अदा करे और उसके पास भी न हो तो दूसरी यूनिट से इन्तेज़ाम किया जाये। जब सारी आबादी की इन्श्यूरेन्स यूनिटें बार न उठा सकें तो ऐसी सूरत में मर्कज़ी हुकूमत भी मदद करेगी। यह एक खास निज़ाम था जो मदीना मुनव्वरा में क़ायम किया गया और उसको दस्तूर (संविधान) के अन्दर लिखित रुप में ले लिया गया। गर्ज़ सरकारी तौर हदीस लिखवाने की एक मिसाल यह दस्तूर हुकूमते मदीना का दस्तावेज़ भी है। इन्हीं इब्तेदाई कामों में एक और चीज़ यह है कि जब महाजिरों के गुज़र बसर का इन्तेज़ाम मवाख़ात (भाई-भाई बन जाना)के ज़रिये कर दिया गया और उसके बाद

शहरी हुकूमत वजूद में आ गयी यानी ऐसी हुकूमत जिसका रक़बा सिर्फ एक शहर था। और उसके अन्दर अदालत और क़ानून ग़र्ज सारी चीज़ों का इन्तेज़ाम कर दिया गया तो रसूलूल्लाह सल्ल० इसी पर इक्तेफा नहीं फरमाते हैं आप मक्का के अल्टीमेटम के जवाब में एक इक़दाम फरमाते हैं, वह इक़दाम (पहल) यह था, कि मदीना मुनव्वरा के आसपास का आप दौरा शुरु कर देते हैं। मसलन उत्तर की तरफ जाते हैं वहाँ के कबीलों से कहते हैं कि तुम इस वक्त एक आज़ाद क़बीला हो और खुदमुख्तार (स्वाधीन) हो लेकिन दुशमन से मुक़ाबला हो तो तन्हा हो गये। क्या यह मुनासिब न होगा कि हम दोनों में एक हलीफ़ी मुआहिदा (सन्धि) हो जाये। तुम पर कोई दुशमन हमला करे तो हम तुम्हारी मदद को आयेंगे और अगर हम पर कोई दुशमन हमला करे और हम तुम्हें बुलायें तो तुम भी हमारी मदद को आओ। यह बात उनके दिल को लगी और उनके साथ मुआहिदा (सन्धि) हो गया। यह मुआहिदा लिखित रुप में अमल में आया और वह हम तक पहुँचा है। फिर आप पूरब की तरफ जाते हैं, फिर दक्खिन की तरफ, गर्ज़ मुख्तलिफ इलाक़ों में मदीना के आस पास में समय-समय पर दौरा करके हिजरत के पहले और हिजरत के दूसरे साल मुख्तलिफ ग़ैर मुस्लिम क़बीलों से हलीफ़ी मुआहिदे किये गये और यह मुआहिदे लिखित रुप में लाये गये। इसके बाद उसका सिलसिला और चलता रहा। ग़र्ज़ यह इब्तेदाई निज़ाम (प्रारम्भिक व्यवस्था) था कि एक तरफ मदीने के अन्दर अमन व अमान का और आपसी मेल-मिलाप का इन्तेज़ाम किया

जाए और मदीने के आस पास दोस्त कबीलों का जाल फैला दिया जाए ताकि दुशमन हमला करे तो पहले उसे हमारे आस पास के क़बीलों से जंग करना पड़े और हम सुरक्षित रहें। यह वह सियासी तदबीर थी जो रसूलुल्लाह सल्ल० ने फरमाई और जिसके सिलसिले में तहरीर का बार-बार ज़िक्र आया है।

इसके बाद और बेशुमार चीज़ें ऐसी मिलती हैं जो लिखित रुप में अमल में आयीं उनमें से बाज़ चीज़ें प्राइवेट हैं। मसलन हुज़ूरे अकरम सल्ल० एक गुलाम खरीदते हैं, उसका परवाना मौजूद है कि मैंने यह गुलाम फलाँ शख्स से खरीदा, इतनी रक़म दी गयी या एक गुलाम को हुज़ूरे अकरम सल्ल० आज़ाद फरमाते हैं उसे आज़ादी का लिखित परवाना दिया जाता है कि फलाँ व्यक्ति को आज़ाद किया जाता है। इसे सब स्वीकार करलें कि यह व्यक्ति आज़ाद है, अब इसे गुलाम न क़रार दिया जाए। वग़ैरा-वग़ैरा। एक और चीज़ बाद की है शायद ८ हिजरी में हुज़ूर सल्ल० मक्का मोअज़्ज़मा के एक शख्स को खत लिखते हैं कि जैसे ही यह संदेश वाहक पहुंचे, ज़मज़म का पानी सुबह हो या शाम फौरन उसके हाथ मुझे भेजो। इसी तरह मसलन जब इस्लामी हुकूमत का दायरा बढ़ जाता है तो मुख्तलिफ जनपदों और राज्यों के गर्वनरों के नाम परवाने भेजे जाते हैं कि फलाँ काम अन्जाम दो। या गर्वनर खुद दरयाफ्त करता है कि इस खास सूरत में हमें क्या करना चाहिये तो उसका जवाब मदीना से भेजा जाता है। ग़र्ज सरकारी तहरीरों की कसीर तादाद बहुत हैं और उस वक्त उनकी तादाद जो हम

तक पहुँची है कम से कम चार सौ पत्र आप सल्ल० के द्वारा भेजे हुये पाए जा चुके हैं जिनमें कुछ तबलीग़ी भी हैं। मसलन क़ैसर व किसरा को दीने इस्लाम की दावत दी गयी है कुछ दोस्ताना मुआहिदे हैं वग़ैरा-वग़ैरा।

अब लिखित हदीस का दूसरा पहलू लीजिये यानी वह हदीसें जो सरकारी तहरीरें नहीं हैं बल्कि सहाबा कराम रज़ि० उसे निजी तौर पर संकलित करना शुरु कर देते हैं। आम तौर पर सहाबा कराम रज़ि० उम्मी (अनपढ़) थे। लिखना पढना उन्हें नहीं आता था लेकिन अच्छे और मुख्लिस मुसलमान ज़रुर थे। जब मदीना में होते तो अकसर मस्जिदे नबवी में हाज़िर होते। रसूलुल्लाह सल्ल० के इरशाद को सुनते उस पर अमल करते। लेकिन एक वाक़िया पेश आया जो ग़ालिबन आग़ाज़ है हदीस के संकलन का। वाक़िया यूँ है कि एक दिन एक सहाबी आए उनका नाम बयान नहीं हुआ है, तिरमिज़ी में यह हदीस मौजूद हैं कि उन्होंने हुज़ूर सल्ल० से कहा ''या रसूलुल्लाह सल्ल० आप रोज़ाना जो चीज़ें हमें बयान करते हैं वह बेहद दिलचस्प, बेहद अहम और ज़रुरी होती हैं लेकिन मेरा हाफ़िज़ा (स्मरण शक्ति) कमज़ोर है मैं उन्हें भूल जाता हूँ क्या करुँ'' हुज़ूर सल्ल० ने जवाब में यह अल्फाज़ फरमाये ''अपने सीधे हाथ से मदद लो। यानी लिख लिया करो। ग़ालिबन उन्होंने इस इजाज़त से फायदा उठाया होगा और लिखा होगा। बाद में क्या हुआ हमें इस ताल्लुक़ से तफ़सील नहीं मिलती। बाद में एक दूसरा वाक़िया जो ग़ालिबन इसी हुक्म और अपने सीधे हाथ से मदद लो के अल्फ़ाज़

का नतीजा समझना चाहिये वह हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र व बिन अलआस का वाक़िया है। यह नौजवान थे। ग़ालिबन सोलह या सत्रह साल की उम्र होगी। बेहद ज़हीन बेहद दीनदार और इल्मी ज़ौक़ रखने वाले थे। उनके इल्मी ज़ौक़ व शौक का अन्दाज़ा इससे कीजिये कि बाद में उन्होंने सुरयानी ज़बान भी सीखी और वह ईसाइयों की दीनी किताब इन्जील को सुरयानी ज़बान में भी पढ सकते थे। उन्हें रसूलुल्लाह सल्ल० ने इजाज़त भी दी थी कि अपने इल्मी काम जारी रखें। यानी क़ुरआन के साथ बाइबल भी पढ़ सकते हैं। ग़र्ज़ अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन अलआस जब यह सुनते हैं कि फलाँ शख्स को हुज़ूर सल्ल० ने फरमाया ''अपने सीधे हाथ से मदद लो'' तो उन्होंने खुद लिखना शुरु कर दिया। रसूलुल्लाह सल्ल० से जो कुछ भी सुनते उसे फौरन नोट कर लेते थे। दो चार दिन ग़ालिबन इसी तरह का वाकिया गुज़रा होगा। फिर उनके दोस्तों ने उनसे कहा ऐ अब्दुल्लाह! तुम क्या कर रहे हो? रसूलुल्लाह सल्ल० इन्सान हैं कभी खुश होते हैं कभी नाराज़ होते हैं, तुम उनकी हर चीज़ नोट करते जा रहे हो, यह मुनासिब नहीं'' कोई और शख्स होता तो वह उनके कहने पर अमल करता और उसे छोड़ देता, मगर वह ज़हीन थे। उन्होंने सोचा कि बजाए उनसे सलाह लेने या उनकी बात मानने के क्यों न सीधे रसूलुल्लाह से रुजू किया जाए। उनके पूछने पर हुज़ूर सल्ल० ने फ़रमाया ज़रुर लिखो। इत्मिनान के लिये वह पूछते हैं कि क्या उस वक्त भी जब आप नाराज़ हों? हुजूर सल्ल० का जवाब यह है ''उस ज़ात की

क़सम जिसके हाथों में मेरी जान है, यहाँ से जो चीज़ निकलती है (अपने मुंह की तरफ इशारा फरमाया) वह हक़ ही होती है'' इससे ज़ाहिर है कि हज़रत अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अलआस पूरी सावधानी के साथ हदीसों को लिखते रहे। कुछ रिवायतों से पता चलता है कि उनके मजमूए अहादीस (हदीस-संग्रह) में कोई दस हज़ार हदीसें थीं। और उसके बाद उनके बेटे और उनके पोते इस क़ल्मी नुस्खे (हस्तलिखित) की मदद से दूसरे लोगों को हदीस की तालीम दिया करते थे। अम्र बिन शुऐब बिन अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन अलआस मशहूर मुहद्दिस (हदीसे के विद्वान) गुज़रे हैं।

ऐसी और भी मिसालें मिलती हैं, मसलन अबू राफे एक आज़ाद शुदा गुलाम थे। वह भी एक दिन रसूलुल्लह सल्ल० के पास आकर कहते हैं कि क्या मैं आप की हदीसों को लिख सकता हूँ, हुज़ूर सल्ल० ने उन्हें भी इजाज़त दे दी। उन्होंने भी हदीसों का संकलन तैयार किया होगा। इनमें सबसे अहम हज़रत अनस बिन मालिक रज़ि० हैं। उनका क़िस्सा यह है कि हिजरत के वक्त उनकी उम्र दस साल की थी, बहुत कम उम्र बच्चे थे लेकिन एक ऐसे बच्चे जिसके वालिद निहायत मुखलिस मुसलमान थे। हज़रत अनस रज़ि० खुद फरमाते हैं कि जब मदीना में हुज़ूर सल्ल० तशरीफ लाए तो मेरी वालिदा ने मेरा हाथ पकड़ कर हुज़ूर सल्ल० के मकान पर जाकर हुज़ूर सल्ल० के सामने पेश किया और बहुत ही फख़्र के साथ कहने लगीं ''या रसूलुल्लाह सल्ल० मेरा बच्चा लिखना पढना भी जानता है, ठीक उसी तरह जैसे आज हम आप

कहें कि मेरा बेटा डाक्ट्रेट यानी पीएच०डी० की डिग्री ले चुका है, ग़र्ज़ बड़े फख़्र से बयान करती हैं और फिर कहती हैं या रसूलुल्लाह सल्ल०! मेरी इ़ज़्ज़त अफज़ाई का बाएस होगा अगर इसे आप सेवक के रुप में क़ुबूल करलें।'' हज़रत अनस रज़ि० कहते हैं कि मेरी वालिदा की दरख्वास्त को रसूलुल्लाह सल्ल० ने कुबूल फरमाया, चुनांचे मैं हुज़ूर सल्ल० के मकान में आप सल्ल० की वफात तक रहा। इस दस साल के अरसे में हमेशा रसूलुल्लाह सल्ल० के मकान ही में रहा, सुबह व शाम वहीं रहता, आप सल्ल० की ज़ाहिरी व बातनी ज़िन्दगी को देखता, मस्जिद में आप सल्ल० किया करते हैं वह भी देखता, मकान के अन्दर अपनी सम्मानित पत्नियों से किस तरह बर्ताव करते हैं, क्या खाते हैं किस तरह सोते हैं, गर्ज़ हर चीज़ का मैं मुशाहेदा कर सकता था। ज़ाहिर है कि यह सहूलत जो उनको हासिल थी, बड़े से बड़े सहाबा रज़ि० मसलन हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि० को भी हासिल नहीं हो सकती थी कि रसूलुल्लाह सल्ल० की ज़िन्दगी को इस क़दर क़रीब से देखें। हज़रत अनस रज़ि० फरमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्ल० की वफात के बाद के ज़माने में मुसलमानों की जमाअत की तादाद बढ़ी और उन्हें रसूलुल्लाह सल्ल० के हालात मालूम करने का शौक पैदा हुआ तो मेरे पास बहुत से शार्गिद (शिष्य) आया करते थे। इसके बारे में उनकी रिवायत के दो अल्फाज़ हैं। ''इज़ा कसरु'' (जब उनकी तादाद ज़्यादा होती) और ''इज़ा अकसरु'' (जब वह ज़्यादा इसरार करते) बहरहाल जो भी

सही हो हज़रत अनस रज़ि० कहते हैं कि ऐसे मौक़े पर मैं एक सन्दूक़ में से एक पुराना रजिस्टर या पुरानी किताब निकालता और अपने शार्गिदों को बताता और कहता कि यह वह चीज़ है जो मैंने रसूलुल्लाह सल्ल० से नोट की है। और उसे रसूलुल्लाह सल्ल० के सामने समय-समय से पेश भी किया है। मेरी तहरीर में कोई कमी या ग़ल्ती होती तो हुज़ूर सल्ल० इस्लाह फरमा देते। यह हज़रत अनस रज़ि० का मजमूआ (संग्रह) है जो यक़ीनन कई हज़ार हदीसों पर आधारित होगा। यह एक ऐसी हदीस की किताब कही जा सकती है जो सही तरीन हदीस की किताब है क्योंकि लिखने के बाद खुद रसूलुल्लाह सल्ल० इस पर नज़रे सानी फरमाते यानी सुन कर उसकी इस्लाह फरमाते, ऐसी और मिसालें भी मिलती हैं। ग़र्ज़ रसूलुल्लाह सल्ल० की ज़िन्दगी में रसूलुल्लाह सल्ल० की इजाज़त से रसूलुल्लाह सल्ल० के हुजूर में हदीस का संकलन हो रहा था। बुखारी शरीफ में दो हज़ार से ज़्यादा हदीसें नहीं हैं और बाज़ रिवायात के मुताबिक़ हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस के संकलन में दस हज़ार हदीसें थीं। इससे आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि कितनी अधिक हदीसें खुद रसूलुल्लाह सल्ल० की ज़िन्दगी में लिखित रुप में संकलित हो चुकी थीं। बदकिस्मती से वह सब की सब हमारे पास किताबी सूरत में नहीं पहुँची। बाद के संकलन कर्ताओं ने उनको तितर बितर कर दिया है। यानी अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस रज़ि० की हदीसों में से एक हदीस को एक अध्याय में दूसरी हदीस को दूसरे अध्याय में तहरीर किया है। इस तरह उनका जो

मूल संकलन था वह हम तक नहीं पहुँच सका। बहरहाल यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आप सल्ल० के ज़माने में ही हदीसों को जमा करने का आग़ाज हो चुका था और उसमें इज़ाफ़ा भी होता गया। रसूलुल्लाह सल्ल० की वफ़ात के बाद हमको ऐसे सहाबा रज़ि० की तादाद बढ़ती हुई नज़र आती है जो अपनी याददाश्तों को लिख लेना ज़रुरी समझते थे। रसूलुल्लाह सल्ल० की ज़िन्दगी में उन्हें ख्याल नहीं आया। अब उन्हें एहसास हुआ कि रसूलुल्लाह सल्ल० बाक़ी न रहें मैं भी आज नहीं तो कल मरने वाला हूँ, अगर मैं अपनी याददाश्तों को सुरक्षित न कर सका तो यह सब नष्ट हो जाएगीं। कम अज़ कम मैं खुद अपने बच्चों के लिये रसूलुल्लाह सल्ल० के हालात तहरीर कर लूँ। चुनाँचे ऐसी अनेक किताबों का ज़िक्र हदीस की किताबों में आता है। हज़रत समरा बिन जन्दब, हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसूद, हज़रत साद बिन अबादा रज़ि० और दूसरे बहुत से सहाबा थे जिन्होंने किताबें और रिसालें लिख डाले। इन हदीस के संकलनों में से एक के बारे में इब्ने हजर ने लिखा ''फीहि इल्मे कसीर'' (इसमें बहुत इल्म है) एक और रिसाले के बारे में लिखा है कि बहुत ज़ख़ीम था। यह हदीस के संकलन की एक सूरत हुई। एक दूसरी सूरत हदीस के संकलन की यह है कि लोग सहाबा से पूछ कर लिखते थे। मसलन एक शख्स को किसी मसले के बारे में कुछ मालूम करना है तो वह किसी बुर्जुग सहाबी को इस ख्याल से कि मुम्किन है वह जानते हों एक खत लिखता है। वह सहाबी जवाब में हदीस लिख भेजते हैं कि हाँ मैने रसूलुल्लाह

सल्ल० से यह सुना है या रसूलुल्लाह सल्ल० को यह करते देखा है। ग़र्ज़ खत व किताबत (पत्र-व्यवहार) के ज़रिये से हदीस के संकलन और हदीस की तालीम का यह सिलसिला हमें नज़र आता है और उसमें ऐसी बड़ी शखसीयतें भी हैं जैसे उम्मुल मोमनीन हज़रत आयशा रज़ि० कि उनके यहाँ अकसर ख़त आया करते थे और वह जवाब लिखवा भेजतीं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अबी औफ़ी रज़ि० दूसरे सहाबी हैं और उनके बारे सही बुखारी में यह ज़िक्र है कि उनके पास एक खत आया जिसका उन्होंने जवाब लिख भेजा। हज़रत मुग़ीरा बिन शोअबा रज़ि० का भी यही हाल था। हज़रत माविया रज़ि० जैसे खलीफ़ाए वक्त उनसे लिख कर दरयाफ्त करते कि उसके बारे में आपकी क्या मालूमात हैं।

अब मैं एक और खास पहलू की तरफ आता हूँ। वह यह है कि सहाबाए कराम रज़ि० ने जब हदीसों को इस तरह लिख कर संकलित करना शुरु किया और उनकी तालीम अपने ज़माने के नौजवान मुसलमानों को देने लगे तो शुरु में सहाबा के नामों के तहत हदीसें संकलित हुईं। मसलन मैं अपने शहर में हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० सहाबी के पास जाकर सबक़ लेता हूँ और उनसे सुनी हुई हदीसों को जमा करता हूँ। दूसरे शहर में रहने वाले सहाबा से मुझे फ़ायदा उठाने का मौका नहीं मिलता। नतीजा यह हुआ कि शुरु में सहाबा से हदीसें जमा होती रहीं। सहाबा रज़ि० के बाद के दौर में एक ही शख्स कई उस्तादों से दर्स लेता है, मसलन अबू हुरैरा रज़ि० के शार्गिद से दर्स लेने ओर उसकी रिवायत की गयी

क़लम बन्द करने के बाद एक दूसरे सहाबी रज़ि० के शार्गिद के पास जाता है और उससे उसकी हदीसें सुनता है। इस तरह धीरे-धीरे दो तीन नस्लों के बाद सारी हदीसें उल्मा के इल्म में आ गयीं। एक और चीज़ का ज़िक्र करता चलूँ जो हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० के बारे में है और उनका क़िस्सा बहुत दिलचस्प है। हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० ऐसे सहाबी हैं जो देर से मुसलमान हुए यानी ७ हिजरी में रसूलुल्लाह सल्ल० की वफात से तीन चार साल पहले इस्लाम लाए। इसके बावजूद उनसे बेशुमार हदीसें रिवायत की गयी हैं उसकी वजह वह खुद बयान करते हैं ''दीगर सहाबा मसलन अबू बक्र, रज़ि० उमर, रज़ि० उसमान रज़ि० और फलाँ-फलाँ सहाबी सारा दिन अपने कारोबार में लगे रहते, अपने कारोबार और अपनी दुकान में व्यस्त रहते, मैं पेट भरा बन कर मस्जिदे नब्वी के अन्दर पड़ा रहता, रसूलुल्लाह सल्ल० की बातों को सुनने का जितना मौक़ा मुझे मिलता, उतना बड़े-बड़े सहाबा को भी नहीं मिलता'' उनका हाफ्ज़ा (स्मरण शक्ति) भी बड़ा अच्छा था, इल्मी ज़ौक़ भी था, लिखना भी आता था। उन्होंने बहुत सी हदीसें लिखीं। चुनांचे उनके एक शार्गिद हसन बिन अम्र बिन उमय्या ज़मरी ने एक दिन ग़ालिबन हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० के बुढ़ापे के ज़माने में अपने उस्ताद से कहा कि ''उस्ताद आप ने फलाँ चीज़ बयान की थी'' उन्हें याद नहीं था इन्कार किया ''नहीं साहब मैंने कभी यह नहीं कहा, ऐसी कोई हदीस मुझे बिल्कुल याद नहीं'' नहीं उस्ताद आपने ही यह चीज़ हमसे बयान की है''। उस

पर उनका बयान है कि उस्ताद ने मेरा हाथ पकड़ा, अपने घर की तरफ चल दिये और रास्ते में यह कहते चले। ''अगर वाक़ई मैंने वह हदीस तुमसे बयान की है तो मेरे पास लिखित रुप में मौजूद होनी चाहिये'' चुनांचे घर लाए अपनी अल्मारी से एक जिल्द निकाली। अलट-पलट कर देखा मगर नहीं मिली। फिर दूसरी जिल्द और फिर तीसरी जिल्द में नज़र दौड़ाई। फिर उसके बाद यकायक खुशी से पुकार उठे ''क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि अगर मैंने बयान किया है तो वह मेरे यहाँ लिखित रुप में मौजूद होना चाहिये। देखो यह मौजूद है। वाक़ई ठीक है''इब्ने हज्र रज़ि० की रिवायत के और अल्फाज़ यह हैं ''हमें हज़रत अबू हुरैराह ने हदीस की बहुत सी किताबें दिखायीं'' यानी मैंने हज़रत अबू हुरैराह रज़ि० की बहुत सी किताबें उनके घर के कुतुब खाने में देखीं। हज़रत अबू हुरैराह रज़ि० का तर्ज़ अमल आमिलाना और बहुत दिलचस्प था। उनके पास जो शार्गिद आते सारे शार्गिदों को वह एक ही चीज़ नहीं पढाते थे। हर शार्गिद को अलग-अलग हदीसें पढाते थे, चुनांचे जब हमाम बिन मुनब्बा उनके पास आते हैं तो उनको एक खुसूसी रिसाला सौ डेढ़ सौ हदीसों का मुरत्तब करके देते हैं जो ''सहीफा हम्माम बिन मुनब्बा'' कहलाता है। एक दूसरा शार्गिद आता है उसके लिये एक नया मजमूआ तैयार करते हैं जो उस शार्गिद के नाम से मन्सूब हुआ। ग़र्ज़ हज़रत अबू हुरैराह रज़ि० के बारे में हमें यह पता चलता है कि हज़ारों हदीसें उन्हें याद थीं और अपने अधिकांश शार्गिदों को उन्होंने जो रिसाले लिख कर दिये थे वह आज तक सुरक्षित चले आ रहे हैं।

बाज़ हदीसों में ज़िक्र मिलता है रसूलुल्लाह सल्ल० का हुक्म है कि हदीस को मत लिखो और कुछ हदीसों में जिनका मैंने ज़िक्र अभी ज़िक्र किया है, साफ-साफ हुक्म है कि अपने दायें हाथ से मदद लो यानी उन्हें ज़रुर लिखो क्योंकि इस मुंह से कोई चीज़ झूटी नहीं निकल सकती। इन बातों की विपरीतता को कैसे दूर करेंगे? इस बारे में अब हमारे लिये कोई परेशानी बाक़ी नहीं रही। संक्षेप में यह कि ऐसे अनेक सहाबा मिलते हैं जिनका बयान है कि हदीस को नहीं लिखना चाहिये लेकिन वह इस बात को रसूलुल्लाह सल्ल० की तरफ मन्सूब नहीं करते कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने कहा कि हदीस को मत लिखो। जो सहाबी अपनी राय बयान करते हैं उस पर हमें बहस करने की ज़रुरत नहीं, लेकिन जो सहाबा कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने हमें यह हुक्म दिया कि न लिखें, इस पर हमें बहस करने ज़रुरत है। उनमें तीन सहाबी मिलते हैं। एक हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० कि खुद उन्होंने हदीस की काफी किताबें लिख रखी थीं, दूसरे हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ि० हैं और तीसरे अबू सईद अलहज़री। जहाँ तक ज़ैद बिन साबित रज़ि० और हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० की रिवायत का ताल्लुक़ है, हमारे हदीस के माहिरीन उसको रद्द कर देते हैं। वह कहते हैं कि दरम्यान के रावी मोतबर नहीं हैं। उन्होंने ग़ल्ती की है। इल्मे हदीस के उसूल के मुताबिक यह हदीसें क़ाबिले क़ूबूल नहीं हैं। सिर्फ अबू सईद अलहज़री की हदीस उसूले हदीस की रो से बहुत अहम है। क्योंकि ''सही मुस्लिम'' जैसी हदीस की सही किताब में यह मौजूद है। इसके अल्फाज़ यह है कि

रसूलुल्लाह सल्ल० ने हमसे कहा कि मुझसे कोई हदीस न लिखो और उसे अगर लिख चुके हो तो उसे मिटा डालो''। इस हदीस की मौजूदगी में सवाल पैदा होता है कि यह किसी संदर्भ में खास हुक्म से संबधित था या कोई आम हुक्म था? हमारे दोस्त मुस्तफ़ा अली आज़मी हदीस के एक माहिर उस्ताद हैं जो आज कल रियाद यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं, उन्होंने एक दिलचस्प तहक़ीक़ (शोध कार्य) की है। वह कहते हैं कि सही मुस्लिम में जो हदीस आयी है इमाम बुखारी उसे रद्द कर देते हैं। इमाम बुखारी कहते हैं कि यह ग़लत फ़हमी पर आधाति है। हक़ीक़त में यह अबू सईद अलहज़री की यह निजी राय थी जो किसी दरम्यानी रावी की वजह से रसूलुल्लाह सल्ल० की ओर मन्सूब हो गयी है। इन हालात में हम देखते हैं कि रसूले अकरम सल्ल० का यह हुक्म कि हदीस न लिखो, इसका उसूले हदीस के अनुसार कोई सुबूत नहीं। अगर मान भी लें कि किसी वक़्त हुज़ूर सल्ल० ने मना फरमा दिया था तो इसका हल आसान है। ग़ालिबन किसी खास परिवेश में यह हुक्म दिया गया था क्योंकि अबू हुरैरा रज़ि० की मिसाल मौजूद है। वह निहायत ही दीनदार और हदीस पर आमिल शख्स थे। अगर रसूलुल्लाह सल्ल० ने वाक़ई मना किया होता तो वह कभी यह हिम्मत न करते कि हदीस की बहुत सी किताबें खुद लिख डालीं। मुम्किन है किसी खास मौक़े पर या किसी खास वजह से मना किया गया हो और इस वाक़िये के मुताबिक उसे न लिखा गया हो। मसलन निश्चित दिन की हदीसों को न लिखा और बाद में आम

इजाज़त के तहत लिख डाला। ग़र्ज़ कोई खास सियाक़ व सबाक़ (context) होगा। मसलन किसी दिन हुज़ूर सल्ल० ने जैसा कि हदीस में इसका ज़िक्र आता है कि क़ियामत तक पेश आने वाले वाक़ियात को मुसलमानों से बयान फरमाया कि तुम फलाँ मुल्क फतह करोगे, ऐसे इलाक़ों में जाओगे ऐसे-ऐसे मामलात पेश आयेंगे। गर्ज़ कभी क़ियामत तक पेश आने वाली बातों को हुज़ूर सल्ल० ने बयान फ़रमाया। इस सिलसिले में यह बयान भी मौजूद है कि बाज़ सहाबा रज़ि० ने कहा कि या रसूलुल्लाह सल्ल० जब यह तकदीर में है तो फिर हमें कोशिश करने की क्या ज़रुरत है? हुज़ूर सल्ल० ने फ़रमाया कोशिश करना भी तकदीर से है, ऐसा करना पड़ेगा। मुम्किन है उस दिन हुज़ूर सल्ल० ने फ़रमाया हो कि इन बातों को मत लिखो क्योंकि बाज़ सहाबा इस ग़लत फहमी में मुब्तला हो कर यह कह देते हैं कि जब मुकद्दर हो चुका तो कोशिश करने की क्या ज़रुरत है? या कोई और वजह होगी। हज़रत ज़ैद बिन साबित की तरफ भी कुछ किताबें संबन्धित हैं।

एक आखिरी नुक्ता है जिस पर मैं इस तक़रीर को खत्म करता हूँ, वह यह कि एक सवाल पैदा होता है कि हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि०, हज़रत अली रज़ि०, जैसे बड़े और करीबी सहाबा ने हदीस से संबन्धित क्या काम किया है? हज़रत अबू बक्र रज़ि० के संबन्ध से यह रिवायत मिलती है कि रसूलुल्लाह सल्ल० की वफात के बाद उन्होंने अपनी बाक़ी ज़िन्दगी के दो ढाई साल की अवधि में हदीस का एक संकलन तैयार किया। जिसमें पांच सौ हदीसें थीं। लिखने के बाद उनको वह अपनी बेटी हज़रत आयशा

रज़ि० के सुपुर्द करते हैं। मेरा गुमान है कि शायद बेटी ही ने फरमाइश की हो कि ''अब्बा जान मुझे कुछ हदीसें किताबी सूरत में लिख दीजिये'' क्योंकि हज़रत आयशा रज़ि० को इल्म का बेपनाह शौक़ था। बेटी की तमन्ना पर हदीसें तरतीब दीं और उन्हें दे दीं। मगर उस रात को वह हज़रत आयशा ही के मकान में लेटे और सो न सके। हज़रत आयशा रज़ि० कहती हैं कि मेरे अब्बा जान सारी रात करवटें बदलते रहे, मुझे खौफ़ हुआ कि वह बीमार हैं आखिरकार सुबह को भी मैंने हिम्मत नहीं की कि खुद पूछूँ कि आप क्या बीमार हैं? खुद हज़रत अबू बक्र रज़ि० ने कहा कि बेटी! मैंने तुम्हें जो किताब दी है वह ले आना। मैं लायी तो उसे फौरन पानी से धो कर मिटा दिया और कहा। ''इसमें बाज़ हदीसें वह हैं जो मैंने खुद सुनी हैं। उनके बारे में मुझे यक़ीन है बाज़ को मैंने किसी और सहाबी रज़ि० से सुना था। मुझे झिझक और खौफ़ है कि शायद वह अल्फाज़ रसूलुल्लाह सल्ल० के न हों। मैं नहीं चाहता कि रसूलुल्लाह सल्ल० की तरफ कोई ऐसा लफ्ज़ जोड़ दूँ जो रसूलुल्लाह सल्ल० का न हो और किसी बामायनी रिवायत के तहत आया हो'' मगर इस हदीस का यह पहलू बहुत अहम है कि अगर रसूलुल्लाह सल्ल० ने हदीस लिखने की मुमानियत की होती तो यक़ीनन हज़रत अबू बक्र सिद्दीक रज़ि० उससे वाक़िफ़ होते और वह लिखने के बाद आप का मिटाना इस बिना पर नहीं था कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने मना किया था बल्कि इस बिना पर था कि कहीं सही हदीस में कमी-बेशी न रह जाये।

हज़रत उमर रज़ि० के बारे में भी ऐसी एक रिवायत मिलती है। एक ज़माने में उन्होंने हदीस को संकलित करने की कोशिश की थी। उन्होंने लोगों को जमा करके सलाह किया। सबकी राय यही थी कि लिखना चाहिये'' मगर काफी अरसे के बहस-मुबाहसा और सलाह-मशवरा के बाद हज़रत उमर रज़ि० ने कहा कि नहीं लिखना चाहिये और कहा कि ''हमसे पहले की उम्मतों ने अंबिया के कथनों पर अमल किया उनको महफूज़ रखा लेकिन खुदा की नाज़िल करदा किताब को भूल गये उसमें तबदीली होने लगीं। मैं नहीं चाहता कि क़ुरआन के सम्बन्ध से भी यह घटना पेश आये।'' इस तरह हज़रत उमर रज़ि० ने हदीस के संकलन का जो इरादा किया था, इससे यक़ीनी तौर पर साबित हो जाता है कि रसूलुल्लाह सल्ल० की तरफ से कोई मुमानियत नहीं हुई वरना वह लिखने का इरादा न करते। हज़रत उमर रज़ि० के न लिखने की वजह एक दूसरी ही थी कि लोग क़ुरआन से ग़ाफ़िल न हो जाये।

हज़रत अली रज़ि० ने अपनी खिलाफ़त के ज़माने में एक दिन फरमाया ''जिसे एक दिरहम खर्च करने की तौफ़ीक़ है वह काग़ज़ खरीद लाये, मैं हदीसें लिखवाता हूँ, लिख लें'' उनके साथियों में से एक साहब बाज़ार जाकर एक दिरहम में काग़ज़ की एक गडडी खरीद लाये। हज़रत अली रज़ि० ने बहुत सी चीज़ें लिखवायीं और वह उनके पास सुरक्षित रहीं। इस क़िस्से से साबित होता हैं कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने हदीस लिखने की मुमानियत नहीं की वरना हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि० और हज़रत अली रज़ि० जैसे बड़े सहाबी हदीस लिखने या लिखवाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे।